संतमत का इतिहास

विश्व के प्राय : हर देश के इतिहास में ऐसे महापुरूषों का उल्लेख मिलता है जिनका प्रादुर्भाव विश्व - उपकार - हित हुआ। सृष्टि में जब से मानव का आविर्भाव हुआ, तबसे उनके कल्याण का मार्ग-दर्शन करानेवाले कोई-न-कोई ऐसे महापुरूष होते ही रहे है।

सभी प्राणी सदा शान्ति की कामना रखते है। शान्ति की खोज प्राचीन काल में सर्वप्रथम ऋषियों ने की । इस शान्ति को प्राप्त करने वाले आधुनिक युग में सन्त कहलाये । इन सन्तो के मत को ही असल में सन्तमत कहते हैं। इसकी पूर्णरूप से व्याख्या 'सन्तमत की परिभाषा' में बहुत ही उत्तम ढंग से आ रही है, जो इस प्रकार हैं-

1 शान्ति स्थिरता वा निश्चलता को कहते है
2 शान्ति को जो प्राप्त कर लेते हैं, सन्त कहलाते हैं।
3 सन्तों के मत वा धर्म को सन्तमत कहते हैं।

4 शान्ति प्राप्त करने का प्रेरण मनुष्यों के हृदय में स्वाभाविक ही है। प्राचीन काल मे ऋषियों ने इसी प्रेरणा से प्रेरित होकर इसकी पूरी खोज की और इसकी प्राप्ति के विचारों को उप-निषदों में वर्णन किया। इन्हीं विचारों से मिलते हुए विचारों को कबीर साहब और गुरूनानक साहब आदि सन्तों ने भी भारती और पंजाबी आदि भाषाओं में सर्वसाधारण के उपकारार्थ वर्णन किया। इन विचारों को ही सन्तमत कहते है; परन्तु संतमत की मूल भित्ति तो उपनिषद् के वाक्यों को ही मानने पड़ते हैं; क्योंकि जिस ऊँचे ज्ञान का तथा उस ज्ञान के पद तक पहुँचाने के जिस विशेष साधन नादानुसन्धान अर्थात् सुरत-शब्द-योग का गौरव सन्तमत को है, वे तो अति प्राचीन काल की इसी भित्ति पर अंकित होकर जगमगा रहे हैं। भिन्न-भिन्न काल तथा देशों में सन्तों के प्रकट होने के कारण तथा इनके भिन्न-भिन्न नामों पर इनके अनुयायियों द्वारा सन्तमत के भिन्न-भिन्न नामकरण होने के कारण सन्तों के मत में पृथकत्व ज्ञात होता है; परन्तु यदि मोटी और बाहरी बातो को तथा पन्थाई भावों को हटा कर विचारा जाय और सन्तों के मूल एवं सार विचारों को ग्रहण किया जाय तो यही सिद्ध होगा कि सब सन्तों का एक ही मत हैं।

इस परिभाषा के अनुसार यह कहा जा सकता है कि सन्तमत का प्रचार प्राचीन काल से ही होता चला आ रहा है। लेकिन सब सन्तों का एक ही मत है, इस विचार के प्रथम प्रचारक हुए

हाथरस के सन्त तुलसी साहब। ऐसे तो गोस्वामी तुलसी दास जी ने भी "यहाँ न पच्छपात कछु राखों। वेद पुरान सन्तमत भाखो ।।" कह कर सन्तमत को प्रश्रय दिया है, परन्तु तुलसी साहब ने किसी सम्प्रदाय का पक्ष नहीं लेकर सन्तों के विचार और मार्ग को ही श्रेष्ठता दी। उन्होंने स्पष्ट कहा-

"सन्त गुरू और पंथ न जाना। यही सन्त पन्थ हित माना।।"

संत तुलसी साहब का इस धरती-तल पर कब आविभार्व हुआ, अज्ञात है। वे हाथरस के किले की खाई में रहकर साधना किया करते थे। इनके साथ में इनके शिष्य श्री गिरिधारी दास रहते थे। श्री गिरिधारी दास जी शहर से रोटियों माँग लाते और गुरू-शिष्य दोनों भोजन करते । उनकी मधुकरी वृति भी विचित्र थी। सप्ताह में छः दिनों तक रोटियाँ माँगते और इन छः दिनों की बची रोटियों को सातवें दिन मट्ठा माँग कर उसमें मिलाकर खा लिया करते थे। तुलसी साहब का कोई विशेष जन-सम्पर्क नहीं था। संयोगवश हाथरस शहर के एक मुन्शी जी जिनका नाम श्री नवनीत राय था, को उनके दर्शन हुए। वर्षा के कारण किले की खाई में पानी हो गया था। इसलिये मुन्शी जी अनुनय-विनय करके उन्हें अपने घर पर ले गये। मुन्शी जी ने यथायोग्य सेवा की। वर्षा समाप्त होने पर तुलसी साहब पुनः किले की खाई में वापस आ गये। मुन्शी जी के पुत्र का नाम था मुन्शी महेश्वरी लाल जी। वे निःसन्तान थे। सन्त तुलसी साहब के आशीर्वाद से मुन्शी महेश्वरी लाल जी के एक पुत्र हुआ, जिनका नाम पड़ा देवी प्रसाद। जब इनकी उम्र चार वर्ष की हुई तो तुलसी साहब ने इनके माथे पर अपना कर-कमल रखकर शुभाशीष दिया। तुलसी साहब के इस शुभाशीष से आगे चलकर ये देवी साहब के नाम से प्रसिद्ध महात्मा हुए ।

बाबा देवी साहब सन्तमत-सत्संग का प्रचार जीवन-भर करते रहे। यों सन्त तुलसी साहब के बाद सन्तमत के प्रचारक सन्त राधास्वामी साहब भी थे, जिनका पूर्वनाम श्री शिवदयाल सिंह था, लेकिन इनके शरीरान्त होने पर इनके शिष्य राय बहादुर श्री शालिग्राम साहब ने सन्तमत के बदले राधास्वामी के नाम पर ही राधास्वामी मत का प्रचार करना आरम्भ किया। परिणाम स्वरूप यहाँ सन्तमत गौण हो गया और राधास्वामी मत की प्रसिद्धि हुई। परन्तु बाबा देवी साहब सन्तमत के प्रचार को ही प्रश्रय देते रहे । बाबा ने भारत के प्रायः अधिकांश राज्यों (पंजाब, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार, कश्मीर, सिन्ध, हैदराबाद) आदि में घूम-घूम कर प्रचार के सिलसिले में आप बिहार भी आये। बिहार में भगलपुर, कटिहार, पुरैनियाँ, मुगेर, पटना, छपरा, संताल परगना आदि स्थानों मे सन्तमत का प्रचार करते रहे।

बिहार के भागलपुर के मायागंज निवासी श्री बाबू राजेन्द्र नाथ सिंह जी, बी.ए.बी.एल, जोतराम राय (पुरैनियाँ) के श्री बाबू धीरज लाल जी गुप्त, श्री रामदास जी उर्फ ध्यानानन्द परमहंस जी आदि महाशय बाबा साहब के आज्ञानुसार सन्तमत का प्रचार करते थे। 1909 ई. में श्री बाबू राजेन्द्र सिंह जी ने पूज्यपाद महर्षिर्ं मेंही परमहंस जी महाराज ने दृष्टि - योग का भेद प्राप्त किया। 1909 ई. में ही जब बाबा देवी साहब का शुभागमन मायागंज महल्ले में हुआ तो बाबू राजेन्द्र नाथ सिंह जी ने बाबा साहब से निवेदन किया और पूज्य महर्षिर्ं जी से कहा-लीजिये, मैंने आप का गुरु से हाथ पकड़वा दिया।" पीछे बाबा साहब से महर्षि जी को सुरत-शब्द-योग का भेद भी प्राप्त हुआ। बाबा साहब के उपदेशानुसार महर्षिं जी महाराज ने अपने जीवन के प्रथम चरण में घोर साधना की। सिकलीगढ़ धरहरा में जहाँ आप का पितृगृह है, एक आम के बगीचे में कुआँ खोद कर कई महीने तक आपने साधना की। उसके बाद जब भागलपुर की कुप्पाधाट-स्थित गुफा का पता चला तो इस गुफा में 1933-34 ई. में भी साधना की, साधना के साथ - साथ आप सन्तमत सत्संग और साधना प्रचार भी करते रहे। आप के प्रचार का काम घोर-से घोर देहातों में रहा है। जहाँ आवागमन के लिये बैलगाड़ी के अलावा और कोई दूसरा साधन नहीं, वैसे स्थानों में घूम-घूम कर आप सत्संग का प्रचार करते रहे। समाज के साधारण स्तर के लोग, जिनके पास कोई नहीं जाते, जो विद्या-विहीन थे, जो हल कुदाल और खुरपी चलाने का काम करते थे, ऐसे लोगों के बीच भी आपने सन्तमत की सरल साधना का ज्ञान सत्संग के द्वारा काराया। नेपाल की तराई मोरंग के बीहड़ और अति दुर्गम स्थानो में, जहाँ के लोग ठीक से वस्त्र भी पहनना नहीं जानते थे, वैसे लोगों में भी आपने संतमत के ज्ञान और साधना का प्रचार और प्रसार किया। आपका कहना है-"जिसे कोई नहीं पूछता, मै उसके पास जाता हूँ । क्या ये लोग अध्यात्म-ज्ञान के अधिकारी नहीं है ?" आपने सन्तमत-सिद्धान्त में यह स्पष्ट कर दिया है कि-

'जितने मनुष तनधारि हैं, प्रभु भक्ति कर सकते सभी।'

यही कारण है जहाँ पहले सन्तमत - सत्संग में हजार दो हजार की भी उपस्थिति नहीं हो पाती थी, आज वहाँ लाखों की भीड़ होती हैं। आपके सदुपदेशों से प्रेरित होकर क्या देहात, क्या शहर ; क्या विद्वान, क्या अनपढ़ सभी स्थानों और सभी वर्गों के लोग सन्तमत की और आकृष्ट हो रहे है। साधारण से साधारण स्थानों में जब आपका पदार्पण होता है, तो उस क्षेत्र के लोग आपके दर्शन और सदुपदेश से लाभान्वित होने उमड़ पड़ते है। भारत ही नहीं विदेश-रूस, जापान, और स्वीडेन के भी कुछ लोग आपसे दीक्षित हुए है। आपने वेद, उपनिषद् और सिद्धान्त' में निरूपित कर दिया है कि ईश्वर का स्वरूप क्या है ? मायाबद्ध जीव आवागमन के चक्र मे पड़कर दु:ख क्यों भोग रहा है और माया से निवृत्ति का उपाय क्या है? ईश्वर-प्राप्ति के साधन क्या है? और अन्त में सदाचार का

पालन करते हुए एक सर्वेश्वर पर अचल विश्वास और पूर्ण भरोसा रखना, अपने अन्तर में उनकी प्राप्ति का दृढ़ निश्चय रखना, सत्संग, दृढ़ ध्यानभ्यास, सदगुरू-सेवा करना; इन पाँचों को आवश्यक और अनिवार्य बतलाया है।

आप स्वावलम्बी जीवन-यापन करने का उपदेश देते है। आपका कहना है कि किसी भी वेश में रहो, ईश्वर का भजन अर्थात् भक्ति करो और जहाँ रहो सत्संग करो। घर-वार में रहकर भी भजन हो सकता है और वैरागी भी भजन कर सकता है। देश में शान्ति के लिये आप अपने गुरू बाबा देवी साहब के इस वचन पर बहुत जोर देते है, "जब किसी देश में आध्यात्मिकता आयगी तो समाज के लोग सदाचारी होंगे। समाज के लोग जब सदाचारी हो जायेगे तो सामाजिक नीति भी उत्तम होगी। उत्तम सामाजिक नीति होने के कारण राजनीति भी पवित्र हो जायगी और देश में शान्ति विराजती रहेगी।" प्रात:स्मरणीय अनन्त श्री विभूषित सन्त सद्गुरू महर्षि मेंहीं परमहंस जी महाराज संतमत के इस ज्ञान गंगा को 101 वर्ष तक प्रवाहित करते हुए 8 जून 1986 ई. के रात्रि साढे आठ बजे संसार से महाप्रयाण कर गये। उनकी इहलीला सम्वरण के पश्चात् उनके उत्तराधिकारी एवं पट्ट शिष्य संतमत के वर्त्तमान आचार्य सद्गुरू महर्षि संतसेवी परमहंस जी महाराज संतमत के ज्ञान का अलख जगाते रहे।